शंकर वेदान्त में ईश्वर प्रत्यय – एक अवलोकन

कनकलता कुमारी

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग, ति.मा. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सार : मानव इतिहास में कुछ अवधारणाओं ने ईश्वर के विषय के रूप में बहुत आकर्षण, गहन लालसा, उत्साहपूर्ण भक्ति, अत्यधिक चिंतन और अंतहीन बहस उत्पन्न की है। शंकर के अद्वैत मत के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य हैं, शेष सभी वस्तुएं जीव, जगत, प्रपंच और मिथ्या हैं। इनके मत एकेश्वरवाद विश्वास को संदर्भित करता है अर्थात् एक एकल, सार्वभौमिक ईश्वर में। शंकराचार्य के अनुसार ईश्वर यद्यपि अज, अविनाशी, सम्पूर्ण भूतों के ईश्वर और नित्य शुद्ध–बुद्ध मुक्त स्वभाव वाले हैं, तो भी अप. नी त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति माया को वश में करके अपनी लीला से शरीरधारी के समान उत्पन्न हुए लोगों पर अनुग्रह करते हुए दिखते हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य शंकर वेदांत में ईश्वर की अवधारणा का विश्लेषण करने की कोशिश की गई है।

शब्द कुंजी : वेदांत, अद्वैत, ब्रह्म, ईश्वर, माया।

भूमिका

ईश्वरवादी दर्शनों में वेदान्त दर्शन सर्वप्रमुख है। ब्रह्म और ईश्वर ही इस दर्शन का प्रधान विषय है। वेदान्त का ईश्वर तात्विक और धार्मिक दोनों ही दृष्टि से उच्च स्थान रखता है वेदांत दर्शन की लंबी परम्परा में ईश्वर के स्वरूप व महत्व की विविध रूपों मे विवेचना हुई है।

वेदान्त दर्शन, वेदों के अंतिम सिद्धांतों अर्थात् उपनिषदों का व्यवस्थित व सार रूप है। वेदान्त दर्शन की विवेचना बादरायण कृ त ब्रह्म सूत्र से की जाती है। ब्रह्मसूत्र विभिन्न उपनिषदों में दी गई शिक्षाओं में सामंजस्य स्थापित करके सुसंगत परिपूर्ण इकाई के रूप में प्रस्तुत करने के लिए लिखा गया था। इसे उत्तरमीमांसा या शारीरक मीमांसा भी कहा जाता है। ब्रह्मसूत्र की संक्षिप्तता तथा दुर्बोधता के कारण अनेक शंकाएं उत्पन्न हुई। इन शंकाओं का समाधान विभिन्न भाष्यकारों ने अलग अलग भाष्य लिखकर किया तथा इसके लिए वेद तथा उपनिषदों (अर्थात् श्रुतियों) में वर्णित विचारों का उल्लेख किया, फलस्वरूप जितने भाष्यकार हुए उतने ही वेदान्त दर्शन के सम्प्रदाय प्रचलित हुए। शंकर, रामानुज, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बाकाचार्य आदि वेदान्त दर्शन के विभिन्न संम्प्रदायों के प्रवर्तक हुए। वेदान्त दर्शन के अनेक सम्प्रदायों में से चार मुख्य है – 1. अद्वैतवाद जिसके प्रवर्तक शंकर हैं, 2. विशिष्टाद्वैतवाद, जिसके प्रवर्तक रामानुज हैं, 3. द्वैतवाद जिसके प्रवर्तक मध्वाचार्य हैं तथा 4. द्वैताद्वैतवाद जिसके प्रवर्तक निम्बाकाचार्य हैं।

वेदान्त दर्शन का मूल प्रश्न है – जीव और ब्रह्म में क्या संबंध है ? इस प्रश्न का विभिन्न प्रकार से उत्तर देने के कारण ही वेदान्त के अनेक सम्प्रदायों का जन्म हुआ। शंकर के अनुसार जीव और ब्रह्म दो नहीं है, वे वस्तुतः एक है अर्थात् अद्वैत हैं। इसीलिए उनके दर्शन को अद्वैतवाद कहा जाता है। रामानुज के अनुसार एक ही ब्रह्म में जीव तथा अचेतन प्रकृति विशेषण रूप में है। उन्होंने विशिष्ट रूप में अद्वैत का समर्थन किया है, इसीलिए उनका मत विशिष्टाद्वैतवाद कहलाता है। मध्वाचार्य जीव और ब्रह्म को दो मानते हैं। इसलिए उनका मत द्वैतवाद कहलाता है। निम्बाकाचार्य के अनुसार जीव और ब्रह्म किसी दृष्टि से दो हैं तो किसी दृष्टि से दो नहीं हैं, अतः उनका मत द्वैताद्वैत कहलाता है।

वेदान्त दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों मे शंकर अद्वैतवाद को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया है। इसका इतना अधिक महत्व है कि साधारणतया वेदान्त दर्शन से अद्वैत दर्शन का ही आशय ग्रहण कर लिया जाता है।[1] सर चार्ल्स इलियट के मत में शंकर का दर्शन संगति, पूर्णता तथा गाम्भीर्य में भारतीय दर्शन में सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता है।[2]

शंकर की सम्मति में अद्वैत दर्शन परस्पर विरोधी सम्प्रदायों में निहित एक मात्र सत्य है। उन्होंने अपने सब ग्रंथों का निर्माण एक ही उद्देश्य को लेकर किया, अर्थात जीवात्मा को ब्रह्म के साथ अपने एकत्व को पहचानने में सहायक सिद्ध होना और यही संसार से मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।[3]

शंकर के अद्वैत सिद्धांत के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य हैं, शेष सभी वस्तुएं जीव, जगत, ईश्वर, प्रपंच और मिथ्या हैं। शंकर वेदान्त निम्न श्लोकार्द्ध में प्रकट किया जाता है –

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

शंकर के अनुसार ब्रह्म के दो लक्षण है – स्वरूप और तटस्थ।[4] स्वरूप लक्षण से वह सच्चिदानंद है और तटस्थ लक्षण से वह संसार का सृजनकर्ता, पालनकर्ता और संहारक है। ईश्वर सगुण ब्रह्म है ब्रह्म को जब विचार से जानने का प्रयास किया जाता है तब वह ईश्वर हो जाता है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, एक, अर्न्तयामी, स्वतंत्र, जगत का सृष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता है। ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जब माया में पड़ता है तब वह ईश्वर हो जाता है इसलिए शंकर के दर्शन में ईश्वर को मायोपहित ब्रह्म कहा जाता है। वह उपासना का विषय है और कर्म नियम का अध्यक्ष है वह कर्म फलदाता है।

माया और अविद्या को शंकर एक ही तत्व मानते हैं, माया[5] ब्रह्म की शक्ति है जिसके आधार पर वह विश्व का निर्माण करता है। माया के कारण ही निष्क्रिय ब्रह्म सक्रिय हो जाता है। माया सहित ब्रह्म ही ईश्वर है। माया अध्यास रूप है जहां जो वस्तु नहीं है वहां उस वस्तु को कल्पित करना अध्यास कहलाता है। निर्गुण ब्रह्म में जगत और रस्सी में सर्प अध्यस्त हो जाता है। माया अविद्यारूप और अनादि है।[6]

अविद्या जीव में होती है। वह उसकी बुद्धि का गुण है। ज्ञान हो जाने पर अविद्या का नाश हो जाता है। वस्तुतरू जिस प्रकार ब्रह्म और आत्मा में तादात्म्य है, उसी प्रकार माया और अविद्या एक ही है। शंकर ने माया, अविद्या, अज्ञान, अध्यास, अनिर्वचनीय विवर्त, आन्ति, भ्रम नामरूप, अव्यक्त, मूल प्रकृति, बीजशक्ति, इत्यादि शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है।

शंकर ब्रह्म और जीव को वस्तुतः अभिन्न मानते हैं। शंकर का मत है कि जीव का ब्रह्म से एकाकार हो जाना ही मोक्ष है।[7] ब्रह्म के आनन्दमय होने के कारण मोक्षावस्था भी आनंदमय है। मोक्ष का अर्थ शरीर का त्याग नहीं है, बल्कि मोक्ष प्राप्ति के बाद भी

शरीर कायम रह सकता है। इस प्रकार शंकर मोक्ष को निषेधात्मक के साथ–साथ भावात्मक भी मानते हैं। उसकी प्राप्ति मानव के अपने प्रयासों से ही होती है, इसके लिए शंकर ज्ञान को महत्वपूर्ण मानते हैं। कर्म का सहारा लेकर मोक्ष नहीं प्राप्त किया जा सकता। मोक्ष का अर्थ ही वे अविद्या की समाप्ति मानते हैं और अविद्या की समाप्ति ज्ञान या विद्या के द्वारा सम्भव है। अद्वैत वेदांत में मोक्ष के लिए साधन चतुष्टय और श्रवण मनन निदिध्यासन को स्वीकार किया गया है।

ईश्वर का स्वरूप

माया के द्वारा आवृत्त होने पर उक्त ब्रह्म ईश्वर या सविशेष रूप या सगुण रूप प्राप्त करता है। अर्थात् ब्रह्म का सगुण एवं सविशेष रूप ईश्वर है। ईश्वर माया की उपाधि से युक्त ब्रह्म है। माया में प्रतिबिम्बिय या माया से सीमित ब्रह्म ईश्वर है। सगुण ईश्वर ब्रह्म का सर्वोच्च आभास है वह व्यक्तित्व युक्त, सर्वगुण सम्पन्न है। वह सृष्टिकर्ता, पालक एवं संहारक है वह सच्चिदानन्द है। इस प्रकार ईश्वर की सत्ता का मूल कारण माया हैं। माया की शक्ति के द्वारा ब्रह्म ईश्वर कहलाता है। माया के बिना ईश्वर का अस्तित्व भी सिद्ध नहीं होता है। उपनिषद् का अनुसरण करते हुए ब्रह्म और ईश्वर का यही भेद स्वीकार किया गया है। अपर ब्रह्म भी इसी को कहा गया है।[8] विश्व का आधार यही तत्त्व है। यद्यपि यह तत्त्व आत्यन्ति नहीं है, पारमार्थिक भी नहीं है। सृष्टि का हेतु भी यही है। भक्ति एवं उपासना ईश्वर को ही उद्दिष्ट करके होती है। ब्रह्म का भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्रह्म निर्गुण और निराकार है। ब्रह्म को जब हम विचार से जानने का प्रयास करते हैं तब वह ईश्वर हो जाता है। ईश्वर सगुण ब्रह्म है। ईश्वर सविशेष ब्रह्म भी कहा जाता है। ईश्वर सर्वज्ञ है। वह सर्वव्यापक है। वह स्वतन्त्र है। वह एक है। वह अन्तर्यामी है। ईश्वर जगत् का सृष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता है। वह नित्य और अपरिवर्तनशील है। ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जब माया में पड़ता है, तब वह ईश्वर हो जाता है। शंकर के दर्शन में ईश्वर को 'मायोपहति ब्रह्म' कहा जाता है। ईश्वर माया के द्वारा विश्व की सृष्टि करता है। माया ईश्वर की शक्ति है, जिसके कारण वह विश्व का प्रपंच रचता है। ईश्वर विश्व का प्रथम कारण है, ऐसा श्रुतियों में कहा गया है। तथापि ईश्वर को कारण से शून्य माना गया है।

अज्ञान–समष्टि से उपहित–चैतन्य को शंकर वेदान्त मत में ईश्वर माना गया है। अतः उसकी सिद्धि के लिए न्याय के समान किसी अनुमान का उपयोग अनावश्यक है। श्रुतियों में उसके यथार्थ रूप का उल्लेख प्राप्त होता है। न्याय ईश्वर को जगत् का केवल निमित्त कारण मानता है जबकि अद्वैत वेदान्त ने निमित्त और उपादान दोनों कारण के रूप में स्वीकार किया है। भोक्ता और भोग्य के ऐक्य होने पर भी प्रतीयमान भेद व्यावहारिक मात्र है। जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं की मान्यता इन तीनों स्थितियों में स्वीकृत स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर की समष्टि से उपहित चैतन्य ईश्वर ही है यद्यपि उसे विविध संज्ञाओं से अभिहित किया गया है।[9]

आत्मा सत् और चित् है, यह तो आत्म–सत्ता के साथ ही सिद्ध हो जाता है; आत्मा आनन्द–स्वरूप भी है, यह श्रुति और अनुमान के बल पर सिद्ध किया गया है। युक्तियां हैं – 1. आत्मा सुखस्वरूप इसलिए है कि उसका और सुख का लक्षण एक ही है, सुख का लक्षण आत्मा में घटता है। जो वस्तु अपनी सत्ता से ही परार्थता को छोड़ देती है उसे सुख कहते हैं।' सब पदार्थो की कामना सुख के लिए की जाती है, परन्तु सुख की कामना किसी अन्य वस्तु के लिए नहीं होती, स्वयं सुख के लिए ही होती है। इसलिए सुख वह है जो परार्थ या दूसरे के लिए नहीं है। सुख का लक्षण आत्मा में भी वर्तमान है, इसलिए आत्मा सुख स्वरूप है। सब चीजें आत्मा के लिए है, आत्मा किसी के लिए नहीं। 2. सुख का दूसरा लक्षण यह है कि उसमें भी उपाधिहीन प्रेम होता है, अन्य वस्तुओं का प्रेम औपाधिक है। आत्मा में भी उपाधिशून्य प्रेम होता है। याज्ञवलक्य कहते हैं कि आत्मा के लिए ही सब वस्तुएँ–पिता, पुत्र, भार्या, घन, आदि–प्रिय होती है। इस युक्ति से भी आत्मा आनन्द–स्वरूप है।[10]

ईश्वर सब प्राणियों की आत्मा होने से परमात्मा कहलाता है। परमात्मा होने से ही वह सबके अर्न्ततम में स्थित होकर उनका नियमन करता है और सभी प्राणियों का हितैषी है। यद्यपि ईश्वर और जीव दोनों तात्विक रूप से ब्रह्म ही है किन्तु उपाधि भेद के कारण दोनों में अंतर है। ईश्वर की उपाधियाँ शाश्वत, अपरिमेय ज्ञान और शक्तिवाली है। किन्तु जीव की उपाधियाँ है अविद्या, काम और मन शारीरिक तंत्र (अर्थात् शरीर, इंद्रियाँ और अंतःकरण)। जीव ईश्वर के अंश के समान ही है परन्तु वह मुक्त अंश नहीं है। जीव उपासक है और ईश्वर उपास्य है, जीव प्राप्तकर्ता है और ईश्वर प्राप्य है।

शंकराचार्य गीता भाष्य की भूमिका में लिखते हैं कि ईश्वर यद्यपि अज, अविनाशी, सम्पूर्ण भूतों के ईश्वर और नित्य शुद्ध–बुद्ध मुक्त स्वभाव वाले हैं, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति माया को वश में करके अपनी लीला से शरीरधारी के समान उत्पन्न हुए लोगों पर अनुग्रह करते हुए दिखते है।[11]

ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण है। वह उपासना का विषय है। कर्म नियम का अध्यक्ष ईश्वर है। ईश्वर ही व्यक्तियों को उनके शुभ और अशुभ कर्मों के आधार पर सुख–दुःख का वितरण करता है। ईश्वर कर्मफल दाता है। संसार के लोगों के भाग्य में जो विभिन्नता है इसका कारण उनके पूर्ववर्ती जीवन के कर्म हैं। अतः ईश्वर नैतिकता का आधार है। ईश्वर स्वयं पूर्ण है। यह धर्म–अधर्म से परे है, वह एक है। ईश्वर को विश्व का सृष्टा माना जाता है। प्रश्न यह है कि ईश्वर विश्व का निर्माण किसी उद्देश्य से करता है तब ईश्वर की पूर्णता का खण्डन होगा। सृष्टि ईश्वर का एक खेल है। वह अपनी क्रीड़ा के लिए ही सृष्टि सृजन करता है। सृष्टि सृजन करना ईश्वर का स्वभाव है जिस प्रकार साँस लेना मानवीय स्वरूप का अंग है उसी प्रकार सृष्टि सृजन करना ईश्वरीय स्वभाव का अंग है। ईश्वर विश्व का उपादान और निमित्त कारण दोनों है। वह स्वभावतः निष्क्रिय है – परन्तु माया रहने के कारण वह सक्रिय हो जाता है।

परब्रह्म को ही परमसत् मानते हैं। माया की उपाधि के कारण ही अपरब्रह्म की सत्ता सिद्ध होती है किन्तु परब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यद्यपि अपर या सगुण ब्रह्म के सम्प्रत्यय की उतनी ही तर्क सम्मत आवश्यकता है जितनी निर्गुण परब्रह्म की। इसका कारण यह है कि सगुण ब्रह्म की कल्पना के बिना जगत् की व्याख्या नहीं हो सकती और न ही मुक्ति की अवधारणा संभव है। इस प्रकार पारमार्थिक दृष्टि से एकमात्र परब्रह्म की भी सत्ता स्वीकार की है। अतः ब्रह्म का निर्वचन करते हुए वे कहते हैं कि 'जो नाम रूप के द्वारा व्यवहृत तथा अनेक कर्ताओं एवं भोक्ताओं से संयुक्त है, जो प्रतिनियत देश, काल और निमित्त से क्रिया और फल का आश्रय है एवं मन से भी अचिन्त्य रचना रूप वाले इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय जिस सर्वज्ञ शक्तिमान् कारण से होते हैं वह ब्रह्म है।[12] अतः ब्रह्म ही शांकर वेदान्त का सर्वोच्च तत्त्व है। वास्तव में ब्रह्म निर्गुण है; उसे सत्, चित् और आनन्द कहने का तात्पर्य यह है कि वह असत्, जड़ और दुःखरूप अविद्यात्मक वस्तुओं से भिन्न है।

ब्रह्म को किसी भी प्रकार से सविशेष नहीं मानते अर्थात् वे निर्विशेष तथा निर्गुण मानते हैं। निर्गुण शब्द से अभिप्राय है कि उस ब्रह्म में किसी भी प्रकार का गुण नहीं है अर्थात् वह ब्रह्म गुण विहीन है। वे वाक्य उपनिषदों में ब्रह्म के स्वरूप को बताते हुए

सविशेष रूप में बताते हैं। उनका अर्थ विधेयात्मक न करके अपितु निषेधात्मक पद्धति से करते हैं। उनका कहना है कि पर ब्रह्म में स्वतः ही उभयलिंगत्व नहीं हो सकता। यह नहीं हो सकता कि एक ही वस्तु स्वतः ही स्वतः रूप आदि विशेषण वाली भी हो और इसके विपरीत भी हो। उन्होंने आगे कहा है कि अपर ब्रह्म का प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। अर्थात् पर ब्रह्म और अपर ब्रह्म दोनों का प्रतिषेध नहीं हो सकता है, अन्यथा शून्यवाद सिद्ध हो जायेगा। जैसा कि पहले कहा गया है कि शंकर सभी विशेषणों से रहित तथा निर्विकल्प मानते हैं। उनका अभिमत है कि उपनिषदें ब्रह्म को निर्विशेष ही स्वीकार करती हैं। ब्रह्म तो सब विशेषणों से रहित निर्विकल्प ही है। उनके अभिमत में ब्रह्म को ऐसा ही उपनिषदों ने माना है।[13] वे उपनिषदों एवं वेदान्त दर्शन का भाष्य करते हुए जीव तथा ब्रह्म में अभेद सिद्ध करने का पूर्ण प्रयास करते हैं।

शंकर के दर्शन में ईश्वर जगत का निमित्त तथा उपादान कारण दोनों है।[14] ईश्वर एक है, पूर्ण है और अनेक आश्चर्य जनक इन्द्रियों से सम्पन्न है। वह जीवों के पाप–पुण्य के अनुसार विश्व की रचना अपनी लीला से करता है।[15]

डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार ईश्वर सगुण ब्रह्म का नाम है जिसे सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व माना गया है। ईश्वर की सत्ता के विषय में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी प्रमाण पर तथा ज्ञानवाद संबंधी विश्वविज्ञान संबंधी और भौतिक ईश्वरीय ज्ञान संबंधी प्रमाणों पर शंकर विचार करते हैं और उनकी निष्फलता को दर्शाते हैं, जैसा कि कांट ने भी बहुत पीछे जाकर किया। शंकर के दर्शन में ईश्वर एक स्वतः सिद्ध प्रमाण नहीं है, तार्किक सत्य भी नही है, किन्तु एक अनुभव जन्य उपधारणा है जिसकी क्रियात्मक उपयोगिता है। श्रुति इसका आधार है। ईश्वर सर्वोपरि आत्मा है, सर्वज्ञ है तथा सर्वशक्तिमान है। वह प्रकृति का आत्मतत्व है, विश्व का तत्व है। इसका जीवनदायी प्राण तथा प्रेरक स्त्रोत है और समस्त सत्ता रूप आकृतियों का आदि ओर अन्त है।[16] ईश्वर ब्रह्म एवं विश्व के मध्य का तत्व है क्योंकि वह दोनो के स्वरूप में भागीदार है। ईश्वर ब्रह्म से एकता रखते हुए भी विश्व से संबंधित है।[17]

अद्वैत चन्द्रिकाकार सुदर्शनाचार्य का मत है कि एक ही परमेश्वर माया, निष्ठ, सत्व, रज और तमोगुण के भेद से ब्रह्मा, बिष्णु और महेश की संज्ञाओं को प्राप्त होते हैं।[18]

अस्मदीया कहकर यह प्रकट कर दिया है कि कुछ वेदान्ती विद्वान् ऐसे थे जो जीव ब्रह्म से भिन्न पारमार्थिक रूप में मानते थे, उपाधिकृत नहीं। अन्य और भी अनेकों स्थलों पर जीव और ब्रह्म में अभेद स्थापित करने का प्रयास किया है। परन्तु उन्होंने स्वयं कुछ सूत्रों पर भाष्य करते हुए भेदपरक भी अर्थ किया है। वे एक कसौटी बतलाते हैं कि शरीर स्थित आत्मा है या नहीं। उनका कथन है कि यदि जीव धारी में ये तीन गुण – करें, न करें अथवा उल्टा करें (कर्तु, अकर्तु एवं अन्यथा कर्तुम्[19]) प्राप्त हों तो समझ जाना चाहिये कि इसमें आत्मा है। व्यवहारवाद मानवीय क्रियाओं को यन्त्रवत् बना देता है, जिसमें कर्त्ता की स्वतंत्र इच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता, की कसौटी में पर्याप्त गुंजाइश है।[20]

ब्रह्म और ईश्वर में भेद

ब्रह्म पारमार्थिक दृष्टि से सत्य है जबकि ईश्वर व्यावहारिक दृष्टि से सत्य है। ब्रह्म निर्गुण, निराकार ओर निर्विशेष है परन्तु ईश्वर सगुण और सविशेष है। ब्रह्म उपासना का विषय नहीं है परन्तु ईश्वर उपासना का विषय है। ईश्वर विश्व का द्य सुष्टा, पालनकर्ता, और संहारकर्ता है, परन्तु ब्रह्म इन गुणों से शून्य है। ईश्वर जीवों को उनके कर्मों के अनुसार फल देता है परन्तु ब्रह्म कर्मफलदाता नहीं है। ब्रह्म व्यक्तित्वशून्य है परन्तु ईश्वर इसके विपरीत व्यक्तित्वपूर्ण है। ईश्वर में माया निवास करती है परन्तु ब्रह्म माया से शून्य है। ईश्वर सक्रिय है जबकि ब्रह्म निष्क्रिय है। ब्रह्म को सत्य माना जाता है, परन्तु ईश्वर असत्य है क्योंकि ईश्वर की सत्यता तभी तक है जब तक जीव अज्ञान के वशीमूत है ज्यों ही जीव में विद्या का उदय होता है त्यों ही ईश्वर उसे असत्य प्रतीत होने लगता है। इसलिए शंकर के दर्शन में ईश्वर को व्यवहारिक मान्यता कहा जाता है। यद्यपि शंकर के दर्शन में ईश्वर और ब्रह्म में अन्तर दीखता है फिर भी उनके दर्शन में ईश्वर तथा ब्रह्म के बीच निकटता का सम्बन्ध है।[21]

उपर्युक्त विवेचनाओं के आधार पर संक्षेप में शंकर वेदान्त के ईश्वर प्रत्यय को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं – माया की उपाधि युक्त ब्रह्म ही ईश्वर है। वह नित्य, मुक्त शुद्ध–बुद्ध सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी है। ईश्वर जगत का पालक, शासक एवं संहारकर्ता है। वह जीवों का कर्मफल दाता कल्याण स्वरूप है। साथ ही ईश्वर व्यावहारिक सत् है पारमार्थिक नही ईश्वर को पारमार्थिक की जगह व्यवहारिक सत् मानने के कारण ही शांकर दर्शन में ईश्वर प्रत्यय की संगतता की समस्या उत्पन्न होती है।

संदर्भ

1. दासगुप्ता, एस.एन. : भारतीय दर्शन, भाग 1, पृ. 429.
2. इण्ट्रोडक्शन टू ब्रह्मसूत्र, पृ. 44 में सर चार्ल्स इलियट के विचारों पर राधाकृष्णन का अभिमत, हिन्दूइज्म एण्ड बुद्धिज्म, खण्ड 2, पृ. 208 में।
3. डॉ. राधाकृष्णन्, भारतीय दर्शन, भाग 2, पृ. 386.
4. वारियर, के. : गॉड दन अद्वैत, पृ. 49.
5. अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरना विद्यात्रियुणात्मिका परा। कार्यानुमेया सुधियैव माया यथा जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।।
   सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
   साड्.गाप्यनड्.गाप्युभयात्मिका नो महादभुतानिर्वचनीय रूपा। – शंकर, विवेक चूड़ामणि, 110, 111.
6. अविद्यालक्षणा अनादिमाया – माण्डूक्य उपनिषद – शंकर भाष्य, iii, 36.
7. ब्रह्मण आत्मैकत्व दर्शन मोक्ष साधनम् – ब्रह्मसूत्र पर शंकरभाष्य,, 2.1.14
8. छांदोग्योपनिषद्, 6.1.2; मुण्डकोपनिषद्, 3.1.3; ब्रह्मसूत्र, शंकर भाष्य, 1.4.23.
9. सदानन्द, वेदान्तसार, पृ. 8.
10. संक्षेपशारीरक, 1.24; 1.25.
11. अजः अव्ययो भूतानानीश्वरो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावः अपि सन स्वां माया मूल प्रकृति वशीकृत्म स्वामायया देहवान. इवजातड्व च लोकानुग्रहं कुर्वन इच लक्ष्यते। गीता शं. भा. उद्योदघात पृ. 1
12. ब्रह्मसूत्र पर शंकरभाष्य, 1.1.2.
13. जयदेव वेदालंकार, उपनिषदों का तत्त्वज्ञान, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ. 73–76.
14. निमितमेव ब्रह्म स्पादपादानं च वीक्षणात्। कुलाल पन्निमितं तन्नोपादान मृदादिवत – ब्रह्मसूत्र पर शंकर भाष्य, 1–4–23
15. ब्रह्म सूत्र पर शंकरभाष्य, 2–1–25, 32

16. डॉ. राधाकृष्णन (1948) : भारतीय दर्शन, भाग–2, राजपाल एण्ड संस प्रकाशन, दिल्ली, अनु. नंदकिशोर गोभिल, पृ. 469–472.
17. वही, भारतीय दर्शन, भाग–2, पृ. 557
18. अद्वैत चन्द्रिका, पृ. 40, बनारस संस्करण, 1901 उद्धृत – डॉ. राममूर्ति शर्मा : अद्वैत वेदांत.
19. ब्रह्मसूत्र पर शंकरभाष्य, 1.1.1.
20. जयदेव वेदालंकार, उपनिषदों का तत्त्वज्ञान, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ. 150.
21. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा : भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाला बनारसीदास, दिल्ली, पृ0 308.